सर्वहारा दृष्टिकोण

सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर ऑफ इण्डिया (कम्युनिस्ट) का मुखपत्र (पाक्षिक)

वर्ष-28 अंक-21 7 से 21 नवम्बर, 2013 मुख्य संपादक - कॉमरेड कृष्ण चक्रवर्ती मूल्य : 2 रुपये

महान नवम्बर क्रान्ति जिन्दाबाद

''नगण्य अल्पसंख्यकों के लिए डेमोक्रेसी, अमीरों के लिए डेमोक्रेसी–यही है पूँजीवादी समाज की डेमोक्रेसी। अगर हम पूँजीवादी डेमोक्रेसी की मशीनरी पर गौर करें तो मतदान की ''छोटी-छोटी''–कथित छोटी-छोटी बारीकियों में (जैसे आवासीय पात्रता, महिलाओं को इससे बहिष्कृत कर देना आदि), प्रतिनिधित्वकारी संस्थाओं की तकनीकियों में, इकटठे होने यानी सभा करने के अधिकार पर वास्तविक बाधाओं में (सार्वजनिक भवन ''भिखारियों'' के लिए नहीं हैं!), दैनिक अखबारों के विशुद्ध पूँजीवादी संगठन इत्यादि-इत्यादी में हम हर जगह प्रतिबंध पर प्रतिबंध लगे पायेंगे। गरीबों के लिए ये प्रतिबंध, अपवाद, अपवर्जन, अवरोध बहुत कम प्रतीत होते हैं, खासकर उनकी नजरों में जो अभाव से हमेशा अनभिज्ञ रहे हैं और जनजीवन में उत्पीड़ित वर्गों के साथ कभी घनिष्ठ सम्पर्क में नहीं रहे हैं (और अगर 100 में से 99 न भी हों, पर 10 में से 9 बुर्जुआ प्रचारक और राजनीतिज्ञ इसी श्रेणी में आते हैं); लेकिन कुल मिला कर ये प्रतिबंध गरीबों को राजनीति से, डेमोक्रेसी में सक्रिय भागीदारी से अलग-थलग कर देते हैं और उन्हें निकाल बाहर कर देते हैं। मार्क्स ने पूँजीवादी डेमोक्रेसी का यह सार बखूबी समझा था जब उन्होंने कम्यून के तजुर्बे के विश्लेषण में कहा था कि उत्पीड़ितों को कुछ वर्षों के हर अन्तराल के बाद एक बार यह तय करने की इजाजत दी जाती है कि दमनकारी वर्ग के कौन से प्रतिनिधि संसद में उनका प्रतिनिधित्व और दमन करेंगे!''

– वी.आई. लेनिन (राज्य और क्रान्ति, खण्ड 29, अंग्रेजी संस्करण, पृष्ठ 104-105)

''हम किसी तरह मार्क्स के सिद्धान्त को अन्तिम और अनुलंघनीय जैसा कुछ नहीं मानते; हम यह यकीनन मानते हैं कि उन्होंने उस विज्ञान की मात्र आधारशिला रखी है जिसे समाजवादियों को अगर वक्त से पीछे नहीं रहना तो सभी दिशाओं में आगे बढ़ाना है। हमारा मानना है कि मार्क्सवादी सिद्धान्त का एक स्वतंत्र विस्तार रूसी समाजवादियों के लिए खासतौर पर जरूरी है, क्योंकि यह सिद्धान्त मात्र आम दिशा-निर्देशक मूलभूत सिद्धान्त प्रदान करता है जो विशेष तौर पर ब्रिटेन में फ्रांस से भिन्न तरह से, फ्रांस में जर्मनी से भिन्न रूप में और जर्मनी में रूस से भिन्न रूप में लागू किए जाते हैं।''

– वी.आई. लेनिन (सं. र., भाग 4, अं. सं., पृष्ठ 191-192)

पटना बम विस्फोटों की निन्दा
इससे साम्प्रदायिक व फूटपरस्त ताकतों को ही बल मिलेगा

पटना : एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) की बिहार राज्य कमिटी के सचिव कॉमरेड शिव शंकर ने 27 अक्तूबर को पटना रेलवे स्टेशन और गांधी मैदान तथा उसके इर्द-गिर्द हुए बम ब्लास्ट की घटना, जिसमें 5 लोगों की मौत तथा 50 के करीब लोग घायल हुए हैं, की कड़ी निन्दा की। उन्होंने लोगों को सुरक्षा प्रदान करने की अपनी जिम्मेवारी के निर्वहन में नाकाम प्रशासनिक व खुफिया अधिकारियों को कड़ी सजा देने की मांग सरकार से की। राज्य सचिव ने बम ब्लास्ट की घटना की उच्च स्तरीय जांच करवा कर दोषियों को कड़ी सजा देने की भी मांग की। साथ ही उन्होंने घटना में मृतकों के परिजनों और घायलों को पर्याप्त मुआवजा देने की भी मांग की।

कॉमरेड शिव शंकर ने बिहार की जनता को आगाह करते हुए कहा कि हमें इस बात के लिए सतर्क रहने की जरूरत है कि इस घटना के पीछे जो भी ताकतें क्यों न हों, उससे आखिरकार साम्प्रदायिक और फूटपरस्त ताकतों को ही बल मिलेगा।

मेडिकल छात्रा से बलात्कार एवं हत्या के विरोध में जंतर मंतर पर रोष प्रदर्शन

जंतर मंतर पर हुई सभा को सम्बोधित करते हुए एआईएमएसएस की अध्यक्ष कॉमरेड छाया मुखर्जी

नई दिल्ली : मुरादाबाद (यू.पी.) की टीएमयू की एमबीबीएस की छात्रा नीरज भड़ाना की बलात्कार के बाद निर्मम हत्या के दोषियों की गिरफ्तारी की मांग को लेकर 21 अक्तूबर को ऑल इण्डिया डीवाईओ और अखिल भारतीय महिला सांस्कृतिक संगठन (एआईएमएसएस) के बैनर तले उ.प्र. के मुरादाबाद से आये सैकड़ों लोगों ने दिल्ली में जन्तर मंतर पर जोरदार प्रदर्शन किया जिनमें छात्र व महिलाएं भी शामिल थे। प्रदर्शन का नेतृत्व एआईडीवाईओ के प्रदेश अध्यक्ष कॉमरेड हरकिशोर सिंह ने किया। 25 जुलाई को उ.प्र. सरकार द्वारा सीबीआई जांच की घोषणा के बाद भी जांच करने में हीला हवाली पर प्रदर्शनकारियों ने गहरा रोष प्रकट किया। प्रदर्शनकारियों को सीबीआई हैडक्वार्टर, सीजीओ कॉम्पलेस नई दिल्ली जाने से पुलिस ने रोक दिया। प्रतिनिधियों ने माननीय प्रधान मंत्री और सीबीआई निदेशक को ज्ञापन सौंपा और प्रधान मंत्री से इस मामले में तत्काल हस्तक्षेप करने व घटना के वास्तविक दोषियों को तुरंत गिरफ्तार कर सलाखों के पीछे भिजवाने की मांग की।

जंतर मंतर पर हुई सभा को एआईएमएसएस की

(शेष पृष्ठ 2 पर)

मेडिकल छात्रा से.

(पृष्ठ 6 का शेष)

अध्यक्ष कॉमरेड छाया मुखर्जी ने सम्बोधित किया। कॉ. मुखर्जी ने कहा कि विश्वविद्यालय कैम्पस में एक होनहार एमबीबीएस की छात्रा नीरज भड़ाना से बलात्कार के बाद बेरहमी से कत्ल की घटना अफसोसजनक है। उन्होंने कहा कि सरकार की शिक्षा के निजीकरण-व्यापारीकरण की नीति के कारण नये-नये शिक्षा माफिया पनप रहे हैं। शिक्षा के इन ठेकेदारों ने शिक्षा का मूल सारतत्व ही खत्म कर दिया है। सिर्फ इतना ही नहीं बल्कि ये शिक्षण संस्थान अब देह व्यापार व वैश्यावृत्ति के अड्डे बन गये हैं। इस तरह की घटनाएं बर्दाश्त करने लायक नहीं हैं। उन्होंने इस जघन्य घटना के विरोध में आगे आये सभी सामाजिक संगठनों का समर्थन किया और इस तरह की बढ़ती जा रही घटनाओं की रोकथाम के लिए सरकार से कड़े कदम उठाने की मांग की।

सभा को एसयूसीआई के दिल्ली राज्य सचिव कॉ. प्रताप सामल, ऑल इण्डिया डेमोक्रेटिक स्टूडेण्ट्स आर्गेनाईजेशन (एआईडीएसओ) के अखिल भारतीय उपाध्यक्ष कॉ. भास्करानंद, ऑल इण्डिया यूनाईटेड ट्रेड यूनियन सेण्टर (एआईयूटीयूसी) पश्चिमी उ.प्र. उपाध्यक्ष कॉ. मुनीश चन्द्र त्यागी, राज्य सचिव कॉ. विजयपाल सिंह, अभिनाश सक्सैना, ऑल इण्डिया डीवाईओ के जिला उपसचिव मौ. गौरी एडवोकेट, राजेन्द्र सिंह, ऑल इण्डिया डीवाईओ की दिल्ली राज्य सचिव कॉ. प्रकाश देवी, नासिर अली, प्रदीप आहलूवालिया, साहित्कार शिशुपाल मधुकर, मेहनतकश

जन संघर्ष समिति के गंभीर सिंह, सिद्धराज सिंह, मानक चंद, सतेन्द्र सिंह, हिंद पत्रकार एसोसियेशन के विनोद विग, इशरत नियाजी, शिक्षक नेता कमलेश चाहल, राजबाला दीक्षित, बबीता सिंह, कुलदीप शर्मा, दयाशंकर पाण्डेय, सुरेश सिंह, प्रेमपाल सिंह, धर्मपाल सिंह सैनी, गामा सिंह, राजेश शर्मा, नेत्रसिंह भारती आदि ने भी अपनी बात रखी। सभा का संचालन रितु चौधरी ने किया।

इससे पहले हत्यारों की गिरफ्तारी न होने पर एक विशाल रोष जुलूस मुरादाबाद शहर में भी 29 सितम्बर को निकाला गया था। जुलूस अम्बेडकर पार्क पहुँचकर एक सभा में बदल गया था जिसकी अध्यक्षता एआईयूटीयूसी के पश्चिमी उ.प्र. उपाध्यक्ष कॉ. मुनीश चन्द्र त्यागी ने की और संचालन ऑल इण्डिया डीवाईओ के मुरादाबाद जिला उपसचिव मौ. गौरी एडवोकेट ने किया। सभा को मुख्य वक्ता के रूप में संबोधित करते हुए ऑल इण्डिया डीवाईओ के प्रदेश अध्यक्ष तथा इस आन्दोलन के संयोजक कॉ. हरकिशोर सिंह ने इस घटना पर कड़ा रोष प्रकट किया था। इसके अलावा ऑल इण्डिया डेमोक्रेटिक स्टूडेण्ट्स आर्गेनाईजेशन (एआईडीएसओ) की राज्य कमेटी सदस्या रितु चौधरी ने मुरादाबाद में सरकारी विश्वविद्यालय, इंजिनियरिंग व मेडिकल कॉलेज खोलने की मांग को लेकर आन्दोलन करने का प्रस्ताव रखा। इसे सर्वसम्मति से पारित किया गया। सभा में अब तक चलाए गए आन्दोलनों की एक प्रदर्शनी भी लगाई गई थी। सभा को 20 संगठनों के लगभग 25 वक्ताओं ने सम्बोधित किया।

आखिर आन्दोलन के दबाव में सरकार को झुकना पड़ा और 29 अक्तूबर को सीबीआई ने टीएमयू पहुंच कर तहकीकात शुरू कर दी है।

दिल्ली के अनुबंधित कर्मचारियों के आन्दोलन की जीत

दिल्ली सरकार के समाज कल्याण विभाग को अपने अधीन आशा किरण होम में कार्यरत अुनबंधित स्टॉफ नर्स, एएनएम, व हाऊस ऑण्टी व केयर गिवर्स को एक आदेश निकाल कर आऊट सोर्स करने का फैसला किया था। इसके खिलाफ एआईयूटीयूसी से सम्बद्ध दिल्ली राज्य कॉन्ट्रैक्चुअल हैल्थ इम्पलाईज यूनियन ने जोरदार आन्दोलन

किया और 27 सितम्बर को अनिश्चितकालीन हड़ताल का आह्वान किया। इस आह्वान पर आशा किरण होम में कार्यरत समस्त अनुबंधित कर्मचारी हड़ताल पर चले गए।

अंतत: हड़ताल के दूसरे दिन 28 सितम्बर को समाज कल्याण मंत्री श्रीमति किरण वालिया ने यूनियन से वार्ता का संदेश भेजा। वार्ता में मंत्रालय के अधिकारियों जिसमें मंत्रालय के सचिव, डायरेक्टर, डिप्टी डायरेक्टर व होम के एडमिनिस्ट्रेटर शामिल थे। दूसरी तरफ यूनियन की तरफ से कॉ. हरीश त्यागी के नेतृतव में यूनियन के ब्रांच कमेटी अध्यक्ष संजय गुप्ता, सुशील कुमार, श्रीमति अवनीश भल्ला, पिंकी सहरावत, सुमन राठी ने हिस्सा लिया। देर तक चली वार्ता के बाद अन्तत: प्रशासन को आऊट सोर्सिंग का अपना आदेश तुरन्त प्रभाव से वापस लेना पड़ा। साथ ही वर्षों से हाऊस आण्टी व केयर गिवर्स को गैजेटेड छुट्टी नहीं दी जा रही थी। उन्हें भी तत्काल छुट्टियाँ देना शुरू किया गया तथा 2 अक्टूबर को उन्हें पहली बार गैज़ेटेड छुट्टी दी गई। इसके बाद ही हड़ताल को वापस लेने का एलान कर दिया गया।

एआईडीवाईओ द्वारा आयोजित शानदार यूथ कैम्प सम्पन्न

दिल्ली : एआईडीवाईओ की दिल्ली राज्य कमेटी की ओर से 1 से 3 अक्टूबर तक यूथ कैम्प का शानदार आयोजन किया गया। कैम्प में दिल्ली के विभिन्न क्षेत्रों के नौजवानों ने उत्साह के साथ भाग लिया। कैम्प के शुरूआती तीन सत्रों का संचालन एआईडीवाईओ के अखिल भारतीय अध्यक्ष कॉ. मंजुनाथ ने किया। इन सत्रों में उन्होंने 'युवा अग्रगामी आंदोलन' किताब पर आए सवालों, युवा आंदोलन की जरूरत और अनेक युवा संगठन होते हुए भी एआईडीवाईओ ही क्यों करना चाहिए आदि विषयों पर अपना वक्तव्य रखा। उन्होंने बढ़ती हुई बेरोजगारी, समाज में फैले सांस्कृतिक पतन के कारणों पर भी अपनी बात रखी। उन्होंने कहा कि आज की विकट परिस्थिति में युवाओं, विशेषकर एआईडीवाईओ से जुड़े युवाओं की जिम्मेदारी बढ़ गई है। उन्हें समाज में बढ़ रहे अपराध, बेरोजगारी व अश्लीलता के खिलाफ विभिन्न इलाकों में जाकर युवाओं को आंदोलन के लिए संगठित करना होगा ताकि सरकार को बेरोजगारी व अश्लीलता बढ़ाने वाली नीतियाँ बदलने के लिए मजबूर किया जा सके। कैम्प में वाद-विवाद प्रतियोगिता सत्र का विषय था 'किसका रास्ता सही -गांधीजी का या शहीद भगतसिंह का'। इससे उभरे सवालों व विषयों पर संगठन के सर्वभारतीय उपाध्यक्ष कॉ. दीपक कुमार ने विस्तार से चर्चा की।

यूथ कैम्प के समापन सत्र में एसयूसीआई (सी) के पोलिट ब्यूरो सदस्य कॉ. कृष्ण चक्रवर्ती ने युवाओं को सम्बोधित करते हुए गहराती महंगाई, बेरोजगारी, सांस्कृतिक पतन, भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं पर बात रखते हुए कहा कि युवाओं के सामने आज जितनी भी समस्याएं हैं उनका मौजूदा पूंजीवादी व्यवस्था को बदले बगैर समाधान संभव नहीं है। उन्होंने महिलाओं पर बढ़ते अपराध के कारण बताते हुए कहा कि एआईडीवाईओ को व्यापक रूप से सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन छेड़ना होगा। आज जिस तरह से साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया जा रहा है और कांग्रेस-बीजेपी सहित सभी बुर्जुआ संसदीय पार्टियां चुनावों में नौजवानों को मोहरे की तरह इस्तेमाल कर रही हैं, ऐसी स्थिति में हमें नौजवानों को एआईडीवाईओ के संस्थापक कॉ. शिवदास घोष की विचारधारा से लैस करते हुए जोरदार युवा आंदोलन गठित करना होगा।

कैम्प में सांस्कृतिक कार्यक्रम का संचालन कॉ. इन्द्रदेव तथा कॉ. रीतु अस्वाल ने किया जिसमें 'चटगांव' फिल्म दिखाई गई और गीत-संगीत के अलावा 'कब बदलेगा समाज' तथा कृष्णचंदर का चर्चित नाटक 'गड्डा' व एक प्रहसन 'क्रोध पर काबू' का मंचन किया गया। खेल-कूद प्रतियोगिताओं का संचालन कॉ. प्रभाष तथा कॉ. अमरजीत ने किया जिनमें कबड्डी, खो-खो, केला दौड़, मैराथन दौड़ आदि कराये गये। कॉ. मंजुनाथ, कॉ. दीपक कुमार, एसयूसीआई(सी) दिल्ली राज्य सचिव कॉ. प्रताप सामल व दिल्ली राज्य कमेटी सदस्य कॉ. हरीश त्यागी द्वारा नाटक मण्डली तथा प्रतियोगिता में प्रथम आए प्रतियोगियों को और संगठन की दिल्ली राज्य सचिव कॉ. प्रकाश देवी द्वारा एसयूसीआई(सी) के पोलिट ब्यूरो सदस्य कॉ. कृष्ण चक्रवर्ती और एआईडीवाईओ के अखिल भारतीय अध्यक्ष कॉ. मंजुनाथ को स्मृति चिन्ह भेंट किये गये।

द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद

जे वी स्तालिन

(गतांक से आगे)

ऐतिहासिक भौतिकवाद

एक प्रश्न का उत्तर अभी और देना है और वह यह है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद के दृष्टिकोण से समाज के, ''भौतिक जीवन की उन परिस्थितियों'' से हमारा क्या तात्पर्य है जो अन्ततोगत्वा समाज के रूप, उसके विचारों, मतों, राजनीतिक संस्थाओं, आदि को निश्चित करती हैं?

ये ''समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियाँ हैं क्या? उनके लक्षण क्या हैं?

''समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों'' में सबसे पहले तो निस्संदेह प्रकृति है जो समाज को घेरे हुए है। वह ऐसी भौगोलिक परिस्थिति है जो समाज के भौतिक जीवन के लिए अनिवार्य रूप से निरन्तर आवश्यक है और जिसका समाज के विकास पर प्रभाव पड़ता है। समाज के विकास में भौगोलिक परिस्थिति की कौन सी भूमिका है? क्या भौगोलिक परिस्थिति ही वह मुख्य शक्ति है जो समाज के रूप और सामाजिक व्यवस्था के लक्षण निश्चित करती है, जिसके कारण एक व्यवस्था से दूसरी में संक्रमण सम्भव होता है?

ऐतिहासिक भौतिकवाद इस प्रश्न के उत्तर में कहता है–नहीं।

इसमें सन्देह नहीं कि समाज के भौतिक विकास के लिए अन्य बातों के साथ भौगोलिक परिस्थिति अनिवार्य रूप से निरन्तर आवश्यक है और समाज के विकास पर उसका प्रभाव भी पड़ता है। वह उसके विकास की गति को मंदी या तीव्र करती है। परन्तु उसका प्रभाव नियामक नहीं है क्योंकि भौगोलिक परिस्थिति के विकास और उसके परिवर्तनों की अपेक्षा, समाज के विकास और परिर्वतनों की गति कहीं अधिक तीव्र है। तीन हजार वर्षों की अवधि में एक के बाद एक तीन सामाजिक अवस्थाएं यूरोप में आ चुकी हैं: पहली तो आदिम साम्यवादी व्यवस्था, दूसरी दास व्यवस्था, तीसरी सामन्तवादी व्यवस्था। यूरोप के पूर्वी भाग, सोवियत संघ में इन व्यवस्थाओं की संख्या चार तक पहुँच गई है। फिर भी इस अवधि में या तो यूरोप की भौगोलिक परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है या हुआ है तो वह इतना नगण्य है कि भूगोल ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। ऐसा होना स्वाभाविक था। भौगोलिक परिस्थिति में ऐसे परिवर्तन, जिनका कुछ भी महत्व हो, लाखों वर्ष में होते हैं। परन्तु मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था में अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तनों के लिए कुछ एक शताब्दियाँ या एक-दो सहस्राब्दियाँ ही पर्याप्त हैं।

इसमें यह सिद्ध होता है कि भौगोलिक परिस्थिति सामाजिक विकास का ऐसा कारण नहीं है जिसे मुख्य या नियामक कहा जा सके। जो वस्तु स्वयं हजारों वर्षों तक प्राय: अपरिवर्तित रही है, वह कुछ शताब्दियों में आमूल परिवर्तित होने वाली वस्तु का मुख्य कारण नहीं बन सकती।

और भी, ''समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों'' में जनसंख्या में वृद्धि, उसका न्यूनाधिक घनत्व भी निस्संदेह सम्मिलित है क्योंकि समाज के भौतिक जीवन का एक अपरिहार्य तत्व जनता है। बिना एक निश्चित अल्पमत जनसंख्या के, समाज का भौतिक जीवन असंभव है। तब क्या जनसंख्या में वृद्धि वह प्रमुख शक्ति है जो मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था का रूप निश्चित करती है?

ऐतिहासिक भौतिकवाद इस प्रश्न के उत्तर में भी कहता है–नहीं।

अवश्य ही समाज के विकास पर जनसंख्या की वृद्धि का प्रभाव पड़ता है, वह उसकी गति को मंदी या तीव्र करती है, परन्तु सामाजिक विकास में वह प्रमुख शक्ति नहीं हो सकती। समाज के विकास पर उसका प्रभाव नियामक नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि जनसंख्या में वृद्धि अकेले ही इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकती कि एक सामाजिक व्यवस्था की जगह दूसरी सामाजिक व्यवस्था ही क्यों आ जाती है और कोई तीसरी क्यों नहीं आ जाती। आदिम साम्यवादी व्यवस्था

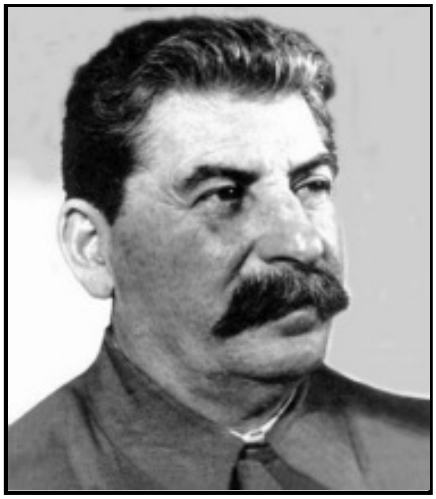

की जगह दास व्यवस्था ही क्यों आई, दास व्यवस्था की जगह सामन्तवादी व्यवस्था और सामन्तवादी व्यवस्था की जगह पूँजीवादी व्यवस्था ही क्यों आई और कोई दूसरी व्यवस्था क्यों नहीं आ गई?

यदि जनसंख्या में वृद्धि सामाजिक विकास की नियामक शक्ति हो तो जनसंख्या के घनत्व के अनुपात से उच्चतर सामाजिक व्यवस्था का जन्म भी होना चाहिए। परन्तु ऐसा तो होता नहीं है। चीन में जनसंख्या का घनत्व अमेरिका से चौगुना है, फिर भी सामाजिक विकास में अमेरिका चीन से कई सीढ़ियाँ ऊपर है। चीन में अब भी एक अर्द्ध-सामन्तवादी व्यवस्था का बोलबाला है जबकि अमेरिका में बहुत पहले ही पूँजीवाद का चरम विकास हो चुका है। बेल्जियम में जनसंख्या का घनत्व अमेरिका से कई सीढ़ियाँ नीचे हैं और सोवियत संघ की तुलना में तो उसे अभी एक पूरा ऐतिहासिक युग पार करना है, क्योंकि बेल्जियम में अब भी पूँजीवादी व्यवस्था का बोलबाला है जबकि सोवियत संघ ने उसे कभी का विदा कर दिया है और उसकी जगह समाजवादी व्यवस्था कायम कर ली है।

इससे सिद्ध होता है कि जनसंख्या में वृद्धि सामाजिक विकास की मुख्य शक्ति, समाज के रूप और सामाजिक व्यवस्था के लक्षणों की नियामक शक्ति नहीं है और न हो सकती है।

(क) तब समाज के भौतिक जीवन की इन परिस्थितियों के ऊहापोह में वह कौन-सी मुख्य शक्ति है जो समाज के रूप और सामाजिक व्यवस्था के चरित्र को निश्चित करती है, जिसके कारण एक से दूसरी व्यवस्था में समाज का संक्रमण सम्भव होता है?

ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार यह शक्ति मानवीय अस्तित्व के लिए आवश्यक जीवन साधनों को प्राप्त करने की प्रणाली है। समाज के विकास और जीवन के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक खाना, कपड़ा, जूता, घर, ईंधन, पैदावार के साधन आदि, भौतिक मूल्यों के उत्पादन की पद्धति ही, यह शक्ति है।

जीने के लिए आदमी को खाना, कपड़ा, जूता, घर, ईंधन वगैरह-वगैरह चीजें चाहिए। इन भौतिक मूल्यों (चीजों) को पाने के लिए यह जरूरी है कि आदमी इन्हें बनाए। इन्हें बनाने के लिए आदमी के पास उत्पादन के वे सब साधन होने चाहिएं जिनसे खाना, कपड़ा, जूता, घर, ईंधन वगैरह बन सकें अर्थात् यह जरूरी है कि आदमी इन सब साधनों को बना सकें और उनसे काम ले सकें।

उत्पादन के वे साधन जिनसे भौतिक मूल्यों का उत्पादन होता है, वे आदमी जो इन साधनों से काम लेते हैं और जो अपने उत्पादन के अनुभव और श्रम कौशल से भौतिक मूल्यों के उत्पादन का कार्य जारी रखते हैं–ये सब तत्व मिलकर समाज की उत्पादक शक्ति कहलाते हैं।

परन्तु उत्पादक शक्ति, उत्पादन का ही एक अंग है, उत्पादन-पद्धति का ही एक पहलू है। भौतिक मूल्यों के उत्पादन के लिए मनुष्य प्रकृति की जिन शक्तियों और पदार्थों का उपयोग करता है, उनसे उसका क्या सम्बन्ध है, इसे यह पहलू प्रकट करता है। उत्पादन का एक दूसरा पहलू भी है, यह पहलू उत्पादन की प्रक्रिया में मनुष्यों का परस्पर सम्बन्ध है, यह मनुष्यों का उत्पादन-सम्बन्ध है। मनुष्य, प्रकृति से संघर्ष करता है और भौतिक मूल्यों के उत्पादन के लिए उसका उपयोग करता है। परन्तु ऐसा वह व्यक्तिगत रूप से दूसरों से अलग रहकर नहीं करता। वह गुटों में, समाज में, दूसरों से मिलकर ऐसा करता है। इसलिए हर समय और हर दशा में उत्पादन एक सामाजिक क्रिया है। भौतिक मूल्यों के उत्पादन में मनुष्य उस उत्पादन क्षेत्र में ही एक या दूसरी तरह का आपसी सम्बन्ध स्थापित करता है अर्थात् वह परस्पर कोई उत्पादन-सम्बन्ध जोड़ लेता है। ये सम्बन्ध, शोषणमुक्त मनुष्यों में परस्पर सहायता और सहकारिता के सम्बन्ध हो सकते हैं। ये सम्बन्ध दासत्व और प्रभुत्व के हो सकते हैं। अन्तिम बात यह है किं ये उत्पादन-सम्बन्धों के एक रूप से दूसरे रूप में संक्रमणमूलक हो सकते हैं लेकिन उत्पादन-सम्बन्धों का चाहे जो भी चरित्र हो, हमेशा और हर सामाजिक व्यवस्था में ये उत्पादन के उतने ही महत्वपूर्ण तत्व होंगे, जितनी महत्वपूर्ण की समाज की उत्पादन शक्तियाँ होंगी।

मार्क्स ने लिखा है: ''उत्पादन में मनुष्य अपना सम्बन्ध प्रकृति से ही नहीं वरन् एक दूसरे से भी स्थापित करता है। एक निश्चित तरीके से सहयोग करके और कार्यों के परस्पर आदान-प्रदान से ही, वे उत्पादन करते हैं। उत्पादन करने के लिए वे परस्पर निश्चित सम्पर्क और सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इन सामाजिक सम्पर्कों और सम्बन्धों की परिधि में ही, वे प्रकृति पर अपनी क्रिया करते हैं, उत्पादन होता है।'' (कार्ल मार्क्स, सं. ग्र., अ.सं, मास्को 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 211)

फलत: उत्पादन-पद्धति में सामाजिक उत्पादन शक्तियाँ और मनुष्य के उत्पादन सम्बन्ध दोनों ही सम्मिलित हैं। वह पद्धति भौतिक मूल्यों के उत्पादन क्रम में, उत्पादन शक्तियों और सम्बन्धों की एकता का मूर्त स्वरूप है।

(ख) उत्पादन का एक लक्षण यह है कि वह किसी एक अवस्था में देर तक स्थिर नहीं रहता, वरन् सदा परिवर्तन और विकास की ही दशा में रहता है। उत्पादन पद्धति में परिवर्तन होने से तमाम सामाजिक व्यवस्था में, विचारों, राजनीतिक मतों और राजनीतिक संस्थाओं में परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है। उत्पादन-पद्धति में परिवर्तन समग्र राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था के नव-निर्माण का कारण बनते हैं। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में मनुष्य, विभिन्न उत्पादन पद्धतियों का प्रयोग करते हैं या मोटे शब्दों में, जिन्दगी बसर करने के अलग-अलग ढंग अपनाते हैं। आदिम साम्यवाद में एक तरह की उत्पादन-पद्धति थी तो दास-व्यवस्था में दूसरी तरह की, सामन्तवाद में तीसरी तरह की, और इसी भाँति आगे भी। इसी के अनुरूप, मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था, मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन, उसके मत और राजनीतिक संस्थाएं भी बदलती जाती हैं।

किसी समाज की जैसी उत्पादन पद्धति होती है, मुख्यत: वैसा ही समाज होता है, वैसे ही उसके विचार और सिद्धान्त होते हैं, वैसे ही उसके राजनीतिक मत और संस्थाएँ होती हैं या सीधे शब्दों में कहें तो जैसा मनुष्य का जीने का ढंग होता है, वैसे ही उसके विचार का ढंग होता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि समाज के विकास का इतिहास मुख्यत: उत्पादन के विकास का इतिहास है। वह कई शताब्दियों के दौरान एक के बाद एक आने वाली उत्पादन-पद्धतियों का इतिहास है, उत्पादक शक्तियों के विकास का इतिहास है, मनुष्य के उत्पादन-सम्बन्धों

(शेष पृष्ठ 4 पर)

द्वंद्वात्मक ऐतिहासिक भौतिकवाद...

(पृष्ठ 3 का शेष)

के विकास का इतिहास है।

इसलिए साथ ही साथ सामाजिक विकास का इतिहास, भौतिक मूल्यों का उत्पादन करने वालों का ही इतिहास है, उस श्रमिक जनता का इतिहास है जो उत्पादन-प्रक्रिया में मुख्य शक्ति है और समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक भौतिक मूल्यों का उत्पादन जारी रखते हैं।

इसलिए यदि इतिहास-विज्ञान को वास्तविक विज्ञान बनाना है तो वह सामाजिक इतिहास के विकास को सम्राटों और सेनापतियों या दूसरे राज्यों के ''विजेताओं'' और ''शासकों'' के कृत्यों में सीमित नहीं कर सकता है। इतिहास-विज्ञान के लिए आवश्यक है कि वह भौतिक मूल्यों के सृजनहार लाखों, करोड़ों, मजदूरों के इतिहास, जन-साधारण के इतिहास को अपने चिन्तन का मूल-विषय बनायें।

इसलिए सामाजिक इतिहास के नियमों का सूत्र मनुष्य के मस्तिष्क में या समाज के विचारों और मतों से नहीं मिल सकता। वह मिलेगा, उस ऐतिहासिक युग में प्रचलित समाज की उत्पादन-पद्धति में। उसे समाज के आर्थिक जीवन में ढूँढ़ना होगा।

इसलिए ऐतिहासिक विज्ञान का प्रमुख्य कर्तव्य यह है कि वह उत्पादन के नियमों का खुलासा करे, वह उत्पादन शक्तियों के विकास और उत्पादन सम्बन्धों के नियमों को स्पष्ट करे।

इसलिए यदि सर्वहारा वर्ग की पार्टी को एक वास्तविक पार्टी बनना है तो उसे उत्पादन के विकास के नियमों का ज्ञान, समाज के आर्थिक विकास के नियमों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

इसलिए नीति में भूल न करने के लिए सर्वहारा वर्ग की पार्टी के लिए आवश्यक है कि अपनी प्रत्यक्ष कार्रवाई में और अपना कार्यक्रम बनाने में, मुख्यत: उत्पादन के विकास के नियमों को, समाज के आर्थिक विकास के नियमों को ध्यान में रखे।

(ग) उत्पादन का दूसरा लक्षण यह है कि उसके विकास और परिवर्तन का आरम्भ हमेशा उत्पादन शक्तियों के विकास और परिवर्तन से होता है। सबसे पहले उत्पादन के साधनों का विकास और परिवर्तन होता है। इसलिए उत्पादक शक्तियाँ उत्पादन का सबसे गतिशील और क्रान्तिकारी तत्व हैं। पहले समाज की उत्पादक शक्तियों में परिवर्तन और विकास होता है और तब इसी परिवर्तन पर निर्भर और उसके अनुकूल, मनुष्यों के उत्पादन-सम्बन्धों या उनके आर्थिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन होता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उत्पादक शक्तियाँ उत्पादन सम्बन्धों पर निर्भर नहीं है। एक ओर उनके विकास पर उत्पादन सम्बन्धों का विकास निर्भर है तो दूसरी ओर उनके उत्पादन-सम्बन्धों की प्रतिक्रिया भी होती है जो, उस विकास की गति को मंदी या तीव्र कर देती है। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिए कि उत्पादन सम्बन्ध, उत्पादक शक्तियों से पिछड़कर और उनके विरोध की दशा में अधिक समय तक नहीं रह सकते क्योंकि, उत्पादक शक्तियों का सहज विकास तभी सम्भव है जब उनकी दशा के और उन्हीं के लक्षणों के अनुकूल उत्पादन-सम्बन्ध भी हों और उन्हें विकसित होने का पूर्ण अवसर देते हों। इसलिए उत्पादन सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों के विकास के चाहे जितना पीछे रह जाएं, उन्हें उत्पादन शक्तियों के विकास की मंजिल तक आगे-पीछे पहुँचना ही पड़ेगा और उत्पादन शक्तियों के अनुकूल बनना ही पड़ेगा। वास्तव में वे यह अनुकूलता प्राप्त कर लेते हैं। ऐसा न होने से उत्पादन क्रम में उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-सम्बन्धों की एकता का ही ध्वंस हो जाएगा। एकता का आधार न रहने से सारे उत्पादन में गड़बड़ी फैल जाएगी, उसमें संकट उत्पन्न होगा और उत्पादक शक्तियाँ नष्ट हो जाएंगी।

उत्पादन संबंध उत्पादक शक्तियों के चरित्र के अनुकूल न हों वरन् उनसे टकराते हों, इसका ज्वलंत उदाहरण पूँजीवादी देशों के आर्थिक संकटों में मिलेगा, जहाँ उत्पादन के साधनों पर पूँजीपतियों का निजी मालिकाना, उत्पादन प्रक्रिया के सामाजिक चरित्र के साथ, उत्पादक शक्तियों के साथ स्पष्ट विसंगति में हैं। इसके फलस्वरूप आर्थिक संकट उत्पन्न होते हैं जिनसे उत्पादक शक्तियों की तबाही होती है। और भी–यह विसंगति ही सामाजिक क्रान्ति का आर्थिक आधार तैयार कर देती है। सामाजिक क्रान्ति का ध्येय वर्तमान उत्पादन-संबंधों का ध्वंस करके, उत्पादक शक्तियों के चरित्र के अनुकूल नए उत्पादन सम्बन्धों का निर्माण करना होता है।

इसके विपरीत, 'उत्पादन सम्बन्ध, उत्पादक-शक्तियों के चरित्र के पूर्ण अनुकूल' होने का उदाहरण सोवियत संघ की समाजवादी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में मिलता है जहाँ उत्पादन के साधनों पर सामाजिक मालिकाना, उत्पादन की प्रक्रिया की सामाजिकता के नितान्त अनुकूल है। इस कारण यहाँ पर आर्थिक संकट और उत्पादक शक्तियों का विनाश भी, देखा-सुना नहीं जाता।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उत्पादक शक्तियाँ, उत्पादन का सबसे गतिशील और क्रान्तिकारी तत्व ही नहीं वरन् उत्पादन के विकास में ये शक्तियाँ ही निर्णायक तत्व हैं।

जैसी भी उत्पादक शक्तियाँ होंगी, वैसे ही उत्पादन सम्बन्ध भी होंगे।

उत्पादक शक्तियों की अवस्था में हमें इस प्रश्न का उत्तर मिलता है। मनुष्य अपने आवश्यक भौतिक मूल्यों को उत्पादन के किन साधनों से उत्पन्न करते हैं? उत्पादन-सम्बन्धों की अवस्था से हमें एक अन्य प्रश्न का उत्तर मिलता है –उत्पादन के साधनों (जमीन, जंगलों, नदी, नालों, खनिज संसाधनों, कच्चे मालों, पैदावार की मिल-मशीनों, कल-कारखानों, यातायात और संचार के साधनों, आदि) पर किसका मालिकाना है? उत्पादन के साधनों का संचालन किसके हाथ में हैं? सारे समाज के हाथ में या कुछ लोगों, गुटों या वर्गों के हाथ में, जो इनका उपयोग दूसरे लोगों, गुटों, या वर्गों के शोषण के लिए करते हैं?

प्राचीन काल से लेकर आज तक, उत्पादक शक्तियों के विकास का एक मोटा-सा नक्शा इस तरह का होगा। लोगों ने जब अनगढ़ पत्थर के औजारों को छोड़कर धनुष-बाण का उपयोग सीखा, तो इसके साथ शिकारियों का जीवन छोड़कर उन्होंने जानवरों को पालने और आदिमकालीन चरवाही का जीवन भी अपनाया। पत्थर के औजारों के बाद जब लोगों ने (कुल्हाड़ी, लोहे की फाली लगे हुए काठ के हल, आदि) धातु के औजारों का प्रयोग सीखा, तो इसके साथ उन्होंने जुताई-बुआई और खेती-बाड़ी करना भी सीख लिया। माल तैयार करने के लिए धातु के औजार और भी अच्छे बनाए गए। लुहार की धोंकनी और मिट्टी के बर्तन बनाने का कुम्हार का चाक-आंवा भी मनुष्य के जीवन में आया। इनके साथ दस्तकारी का विकास हुआ। कृषि और दस्तकारी, दो अलग चीजें हो गईं। दस्तकारी का एक उद्योग के रूप में स्वतंत्र विकास हुआ और इसके बाद मैन्युफैक्चरिंग कारखाने बने। दस्तकारी के औजारों से मैन्युफैक्चरिंग और फिर मशीन उद्योगों की ओर संक्रमण हुआ; इसके साथ दस्तकारी और पुराने मैन्युफैक्चरिंग कारखानों की जगह मशीनी उद्योग-धन्धों ने ली। मशीन सिस्टम में यह संक्रमण होने पर आधुनिक विशाल पैमाने के यांत्रिक उद्योग-धन्धों का विकास हुआ। मानव इतिहास में समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास की यह एक मोटी और अधूरी-सी रूपरेखा है। इससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि उत्पादन के औजारों में विकास और उन्नति उन लोगों ने ही की, जिनका उत्पादन से सम्बन्ध था। यह विकास और उन्नति, मनुष्यों से स्वतंत्र रूप से नहीं हुई है। फलत: उत्पादन के औजारों में परिवर्तन और विकास के साथ उत्पादक शक्तियों के सबसे महत्वपूर्ण तत्व, मनुष्यों में भी परिवर्तन और विकास हुआ। उनके उत्पादन के अनुभव में, श्रम-कौशल में, उत्पादन के औजारों से काम करने की योग्यता में भी परिवर्तन और विकास हुआ।

मानव इतिहास के क्रम में समाज की उत्पादक शक्तियों के परिवर्तन और विकास के अनुरूप, मनुष्यों के उत्पादन सम्बन्धों तथा उनके आर्थिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन और विकास हुआ।

इतिहास में मुख्यत: पाँच प्रकार के उत्पादन सम्बन्ध ज्ञात हैं–आदिम साम्यवादी, दास प्रभुवादी, सामन्तवादी, पूँजीवादी और समाजवादी।

आदिम साम्यवादी व्यवस्था में उत्पादन सम्बन्धों का आधार, उत्पादन के साधनों पर सामाजिक मालिकाना था। यह अधिकतर उस समय की उत्पादक शक्तियों के अनुरूप था। पत्थर के औजारों और बाद में धनुष-बाण ने मनुष्य को प्रकृति की शक्तियों और हिंस्र पशुओं का व्यक्तिगत तौर पर मुकाबला करने में असमर्थ बना दिया था। जंगल से फल बटोर लाने, मछली पकड़ने या किसी तरह का झोंपड़ा बनाने के लिए मनुष्यों के लिए आवश्यक था कि वे मिलकर काम करें। नहीं तो भूख से, जंगली जानवरों का शिकार होकर या पड़ोसी गणों के हाथों उन्हें मरना पड़ता। सम्मिलित श्रम के कारण, उत्पादन के साधनों पर साझा मालिकाना भी हुआ और उत्पादन से जो कुछ मिला, वह भी बाँट लिया गया। अभी तक उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व की कल्पना का जन्म न हुआ था। केवल उत्पादन के कुछ औजार ही व्यक्तिगत थे जो हिंस्र पशुओं के विरुद्ध आत्मरक्षा के काम भी आ जाते थे। इस व्यवस्था में न वर्ग थे, न शोषण था।

दास व्यवस्था में उत्पादन सम्बन्धों का आधार यह था कि गुलामों का मालिक, उत्पादन के साधनों का स्वामी होता था। उत्पादन में काम करने वाले या गुलाम भी उसी के अधिकार में होते थे जिन्हें वह पशु की तरह बेच सकता था, खरीद सकता था और उसकी जान भी ले सकता था। यह उत्पादन सम्बन्ध, उस समय की उत्पादक शक्तियों की अवस्था के अधिकतर अनुरूप ही थे। पत्थर के औजारों के बदले लोगों के पास अब धातु के औजार थे। शिकार की अर्थव्यवस्था, आदिम और निम्न कोटि की थी। उसे न किसानी आती थी न चरवाही। वहां अब चरवाही, कृषि और दस्तकारी आने के साथ, उत्पादन की इन शाखाओं में श्रम विभाजन भी हो गया था। गणों और व्यक्तियों में, माल की अदला-बदली, और कुछ लोगों के हाथों में सम्पत्ति इकट्ठा होने की संभावना उभर कर आई। वास्तव में थोड़े से लोगों के हाथों में उत्पादन के साधन आ जाने और इसलिए बहुसंख्यक लोगों के गुलाम बनाये जाने की, उन पर अल्पमत के प्रभुत्व की संभावना भी उत्पन्न हुई। उत्पादन के कार्य में समाज के सभी लोगों के समान और स्वाधीन श्रम करते हुए भाग लेने की बात न रह गई। अब गुलामों से बेगार कराई जाती थी और खुद श्रम न करने वाले दासप्रभु उनका शोषण करते थे। इसलिए इस व्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर और उत्पादन से जो कुछ फल मिलता था उस पर समाज का साझा अधिकार न रह गया। सामाजिक मालिकाने की जगह, निजी मालिकाने ने ले ली। इस समय गुलामों का मालिक सम्पत्ति का प्रथम और मुख्य स्वामी हो गया, इस शब्द के पूरे-पूरे अर्थ में।

धनी और निर्धन, शोषक और शोषित, पूर्ण अधिकार वाले और बिल्कुल अधिकारहीन और उनके बीच में भयानक वर्ग-संघर्ष–यही दास युग के समाज का चित्र है।

सामन्तवादी व्यवस्था में उत्पादन के सम्बन्धों का आधार यह है कि उत्पादन के साधनों पर मालिकाना सामन्त का होता है परन्तु उत्पादन में काम करने वालों –भूदासों पर पूरा अधिकार नहीं होता। वह उन्हें बेच सकता है, खरीद सकता है, परन्तु उन्हें जान से मार नहीं सकता। इस सामन्तवादी स्वामित्व के साथ, किसान और दस्तकार का भी अपने उत्पादन के औजारों व अपने व्यक्तिगत श्रम पर आधारित उद्यम पर निजी मालिकाना रहता है। इस तरह के उत्पादन सम्बन्ध उस समय की उत्पादन शक्तियों की अवस्था के अधिकतर अनुरूप ही होते हैं। लोहे की ढलाई में और उसकी चीजें बनाने में आगे और उन्नति होती है। लोहे का हल और करघा चालू होता है। कृषि, बागवानी, अंगूर की खेती और डेयरी का काम और आगे बढ़ता है। दस्तकारी की वर्कशॉपों के साथ मैन्युफैक्चरिंग कारखाने भी खुलने लगते हैं। उत्पादक शक्तियों की इस अवस्था के ये मुख्य लक्षण हैं।

नई उत्पादक शक्तियों की यह मांग होती है कि मजदूर, उत्पादन-कार्य में थोड़ी-बहुत पहलकदमी दिखाएं,

(शेष पृष्ठ 5 पर)

द्वंद्वात्मक ऐतिहासिक भौतिकवाद...

(पृष्ठ 4 का शेष)

अपने काम में दिलचस्पी लें। इसलिए सामन्त गुलामी को खत्म कर देता है क्योंकि गुलाम-मजदूरों में पहलकदमी नहीं होती और वे अपने काम में दिलचस्पी नहीं लेते। गुलाम की जगह वह भूदास से काम लेना ज्यादा पसन्द करता है क्योंकि उसकी अपना कृषि कार्य व पशुपालन होता है, पैदावार के औजार होते हैं, खेती करने और सामन्त को फसल का एक हिस्सा देने के लिए काम में जिस दिलचस्पी की जरूरत होती है, वह भी उसमें होती है।

सामन्ती व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वामित्व का और भी विकास होता है। शोषण प्रायः उतना ही तीव्र होता है जितना दास व्यवस्था में, केवल मात्रा में उससे थोड़ा कम होता है। शोषक और शोषित के बीच का वर्ग-संघर्ष ही सामन्तवादी व्यवस्था की प्रमुख विशेषता है।

पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन-सम्बन्धों का आधार यह है कि उत्पादन के साधनों पर पूँजीपति का मालिकाना तो होता है, परन्तु उत्पादन में काम करने वाले मजदूरों पर नहीं। इन मजदूरी करने वालों को वह जान से नहीं मार सकता, न बेच सकता है, क्योंकि व्यक्तिगत रूप से वे स्वाधीन हैं। वे उत्पादन के साधनों से वंचित हैं, इसलिए भूखों मरने से बचने के लिए वे पूँजीपति के हाथ अपनी श्रम-शक्ति बचे देते हैं और शोषण के शिकंजे में कसे जाने पर मजबूर होते हैं। उत्पादन के साधनों में, पूँजीवादी सम्पति के साथ-साथ पहले दासता से छूटे हुए किसानों और दस्तकारों की निजी सम्पत्ति भी, एक बड़े पैमाने पर दिखाई देती है। इन किसानों और दस्तकारों की सम्पत्ति उनके निजी परिश्रम का फल होती है। दस्तकारी की वर्कशॉपों और पुराने मैन्युफैक्चरिंग कारखानों की जगह मशीनों से सुसज्जित बड़ी-बड़ी मिलें और कारखानें दिखाई देने लगते हैं। अब पुरानी जागीरी जमीनों में किसान के पैदावार के आदिम काल के औजारों से खेती नहीं की जाती है। अब पूँजीपतियों के बड़े-बड़े फार्मों में, वैज्ञानिक ढंग से, मशीनों से खेती होती है।

नई उत्पादक शक्तियों की यह मांग होती है कि उत्पादन में काम करने वाले मजदूर, दलित और अशिक्षित भूदासों से अधिक शिक्षित और चतुर हों जिससे कि, मशीनों को समझकर उन्हें ठीक से चला सकें। इसलिए पूँजीपति पगार (वेतन) लेने वाले ऐसे मजदूरों से काम लेना ज्यादा पसन्द करते हें जो भूदासता के बन्धनों से मुक्त हों और मशीनें ठीक से चला सकने भर को शिक्षित हों।

उत्पादक शक्तियों को अत्यधिक विकसित कर चुकने पर पूँजीवाद उन असंगतियों में फँस जाता है जिन्हें वह सुलझा नहीं सकता। ज्यादा से ज्यादा तादाद में माल तैयार करके और उसकी कीमत कम करके पूँजीवाद होड़ को तेज करता है, निम्न और मध्यम कोटि के सभी कारखानेदारों और धन्धे वालों को तबाह कर देता है, उन्हें सर्वहारा वर्ग में ठेलकर उनकी क्रय-शक्ति को कम कर देता है, जिसका फल यह होता है कि तैयार किए हुए माल को बेच सकना असम्भव हो जाता है। दूसरी ओर उत्पादन का विस्तार करके और लाखों मजदूरों को मिलों में इकट्ठा करके, पूँजीवाद उत्पादन को एक सामाजिक जामा पहना देता है जो उसी के लिए घातक होता है, क्योंकि यदि उत्पादन सामाजिक है, तो उत्पादन के साधनों पर भी सामाजिक मालिकाना होना चाहिए। फिर भी उत्पादन के साधन पूँजीपतियों की निजी सम्पत्ति बने रहते हैं। यह बात उत्पादन प्रक्रिया के सामाजिक चरित्र के विरुद्ध पड़ती है।

उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-सम्बन्धों की ये असंगतियाँ, अति-उत्पादन के संकटों के रूप में समय-समय पर प्रकट होती रहती हैं। पूँजीपतियों की अपनी करतूत से ही आम जनता तबाह हो चुकी होती है। इसलिए पूँजीपति यह देखकर कि इस जनता में माल की अच्छी खपत नहीं हो रही, मजबूरन अपना तैयार माल बरबाद कर देते हैं। उसे जला देते हैं, उत्पादन बन्द कर देते हैं और उत्पादक शक्तियों को तबाह कर देते हैं। यह सब जिस समय होता है, लाखों-करोड़ों आदमियों को भूख और बेकारी का सामना करना पड़ता है। इसलिए नहीं कि काफी माल नहीं होता वरन् इसलिए कि माल बहुत ज्यादा तैयार हो गया होता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि पूँजीवाद के उत्पादन सम्बन्ध, अब समाज की उत्पादक शक्तियों की अवस्था के अनुरूप नहीं है और अब दोनों में न सुलझने वाला द्वन्द्व पैदा हो गया है।

इसका अर्थ यह हुआ कि पूँजीवाद के गर्भ में क्रान्ति का पोषण हो रहा है, जिसका ध्येय है कि उत्पादन के साधनों पर पूँजीपतियों के मौजूदा निजी मालिकाने की बजाय सामाजिक मालिकाना हो।

इसका अर्थ यह हुआ कि पूँजीवादी व्यवस्था का मुख्य लक्षण, शोषकों और शोषितों का अत्यन्त तीव्र वर्ग-संघर्ष है।

समाजवादी व्यवस्था अभी सोवियत संघ में ही स्थापित हुई है। उसमें उत्पादन सम्बन्धों का आधार यह है कि उत्पादन के साधनों पर सामाजिक मालिकाना है। यहाँ पर शोषक और शोषित नहीं रह गए हैं। जो माल तैयार होता है, वह मेहनत के हिसाब से बाँट दिया जाता है। वितरण का सिद्धान्त है–''जो काम न करेगा, उसे खाने को भी न मिलेगा।'' यहाँ पर उत्पादन सम्बन्ध, उत्पादक शक्तियों की अवस्था से एकदम मेल खाते हैं। उत्पादन सामाजिक है, उत्पादन के साधनों पर सामाजिक मालिकाना होने से, उत्पादन की प्रक्रिया का सामाजिक चरित्र और भी दृढ़ हो जाता है।

इसी कारण से सावियत संघ में समाजवादी उत्पादन न तो अति उत्पादन के समय-समय पर होने वाले संकटों को जानता है और न ही उनके साथ आने वाली विसंगतियों को।

इसी कारण यहाँ उत्पादक शक्तियों का विकास तीव्र गति से होता है। उत्पादन-सम्बन्ध उन्हीं के अनुरूप होते हैं, इसलिए विकास का पूरा अवसर देते हैं।

मानव-इतिहास में मनुष्य के उत्पादन-सम्बन्धों के विकास की यही रूपरेखा है।

इस प्रकार उत्पादन-सम्बन्धों का विकास समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास पर निर्भर है: उत्पादन सम्बन्धों का विकास सबसे पहले उत्पादन के औजारों के विकास पर निर्भर है। इस निर्भरता के फलस्वरूप उत्पादक शक्तियों के विकास और उनके परिवर्तन के अनुरूप आगे-पीछे उत्पादन-सम्बन्धों का विकास और परिवर्तन भी होता जाता है।

मार्क्स ने लिखा था–''श्रम के औजारों * का प्रयोग और निर्माण बीज-रूप में कुछ पशुओं में भी विद्यमान होता है, परन्तु विशेष रूप से यह मानवीय श्रम-क्रिया का लक्षण है। इसलिए फ्रैंकलिन ने मनुष्य को औजार बनाने वाला जन्तु कहा है। समाज की मृत आर्थिक व्यवस्थाओं की खोज करने वालों के लिए श्रम के प्राचीन औजारों के अवशेष वही महत्व रखते हैं जो महत्व लुप्त पशु-जातियों का निर्णय करने के लिए पाषाणीय अस्थि-पंजरों का होता है। विभिन्न आर्थिक युगों का पता इससे नहीं लगता कि कौन-सी चीजें बनाई गई थी वरन् इससे लगता है कि वे कैसे और किन औजारों से बनाई गई थीं..... श्रम के औजारों से सिर्फ यही पता नहीं लगता है कि मानवीय श्रम विकास किस मंजिल तक पहुँच चुका है वरन् उनसे यह भी पता चलता है कि किन सामाजिक परिस्थितियों में यह श्रम किया जा रहा था।'' (कार्ल मार्क्स, पूँजी, लन्दन 1908, खण्ड 1, पृ. 159)

और भी :

– ''सामाजिक सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों से घनिष्ठता से जुड़े हुए हैं। नई उत्पादक शक्तियों के अर्जन में मनुष्य अपनी उत्पादन-पद्धति बदलता है; और अपनी उत्पादन-पद्धति बदलने में, अपना जीविकोपार्जन का तरीका बदलने में, वे अपने तमाम सामाजिक सम्बन्ध बदल देते हैं। हाथ करघा वह समाज बनाता है जिसमें प्रभुत्व सामन्त का होता है, भाप से चलने वाला चक्का वह समाज बनाता है जिसमें प्रभुत्व औद्योगिक पूँजीपति का होता है।'' (कार्ल मार्क्स, दर्शन की दरिद्रता)

– ''उत्पादक शक्तियों के विकास में, सामाजिक सम्बन्धों के विनाश में, और विचारों के निर्माण में अवरिाम गतिशीलता का परिचय मिलता है। यदि कोई वस्तु स्थिर है तो वह गतिशीलता की अमूर्त कल्पना ही है।'' (वही, पृ. 93)

कम्युनिस्ट घोषणापत्र में ऐतिहासिक भौतिकवाद का प्रतिपादन करते हुए एंगेल्स ने लिखा है–''आर्थिक उत्पादन से प्रत्येक ऐतिहासिक युग के समाज का ढाँचा बनता है। यह ढाँचा और आर्थिक उत्पादन, दोनों मिलकर उस युग के राजनीतिक और बौद्धिक इतिहास का आधार बनते हैं; इसलिए, (जबसे जमीन की आदिम पंचायती मिल्कियत खत्म हुई),समूचा इतिहास, वर्ग-संघर्षों का इतिहास रहा है, सामाजिक विकास-क्रम की विभिन्न अवस्थाओं में शोषकों और शोषितों, सत्तारूढ़ और शासित वर्गों के बीच संघर्षों का इतिहास रहा है। ...लेकिन यह संघर्ष अब ऐसी मंजिल तक पहुँच गया है जहां कि शोषित और पीड़ित वर्ग (सर्वहारा) अपना शोषण-उत्पीड़न करने वाले वर्ग (पूँजीपतियों) से मुक्ति बिना इस बात के हासिल नहीं कर सकता कि वह साथ-साथ हमेशा के लिए समूचे समाज को ही शोषण, उत्पीड़न और वर्ग-संघर्षों से मुक्त कर दे।'' (कम्युनिस्ट घोषणापत्र के जर्मन संस्करण की भूमिका, स.ग्र., मास्को, 1946, खण्ड1, पृ.100-01)।

(घ) उत्पादन का तीसरा लक्षण यह है कि नई उत्पादक शक्तियों और उनके अनुकूल उत्पादन सम्बन्धों का जन्म पुरानी व्यवस्था से अलग, उस व्यवस्था के खत्म हो जाने पर नहीं होता बल्कि पुरानी व्यवस्था के गर्भ में ही होता है। यह जन्म मनुष्य की सोच-विचार वाली और सचेत कार्यवाही के फलस्वरूप नहीं होता बल्कि अपने आप, अचेत रूप से, मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र होता है। इसके अपने आप और मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र होने के दो कारण हैं।

पहला यह कि मनुष्य इस बात में स्वतन्त्र नहीं हैं कि वे उत्पादन का एक तरीका अपनायें या दूसरा। जब कोई भी नई पीढ़ी, जीवन में प्रवेश करती है तो वह ऐसी उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों को पहले से पाती है जो पहले वाली पीढ़ियों के कार्य के फल हैं। इसलिए, उत्पादन के क्षेत्र में उन्हें जो कुछ चीज पहले से तैयार मिलती है मजबूरन उसे पहले स्वीकार करना पड़ता है और अपने को उसके अनुकूल बनाना पड़ता है जिससे कि वे भौतिक मूल्य पैदा कर सकें।

दूसरा कारण यह है कि जब मनुष्य उत्पादन के किसी औजार को सुधारते हैं या उत्पादक शक्तियों के किसी अंग को विकसित करते हैं, तो वे ये नहीं समझते या यह सोचने के लिए नहीं ठहरते कि इस उन्नति का सामाजिक परिणाम क्या होगा। वे अपने रोजमर्रा के फायदे की बात सोचते हैं कि कैसे मेहनत का भार कुछ हल्का हो, या कैसे उनके लाभ का कोई सीधा रास्ता निकल आए।

आदिम साम्यवादी व्यवस्था में जब धीरे-धीरे टटोलते हुए कुछ आदमियों ने पत्थर के हथियार को छोड़कर लोहे के औजारों से काम लेना सीखा, तब वे यह न जानते थे और न उन्होंने यह सोचने में कुछ समय लगाया होगा कि इस परिवर्तन का सामाजिक परिणाम क्या होगा। उन्होंने इस बात को नहीं समझा या अहसास नहीं था कि धातु के औजारों के प्रयोग से, उत्पादन में एक क्रान्ति हो जाएगी और आगे चलकर इससे दास व्यवस्था उत्पन्न होगी। वे तो अपनी मेहनत का भार कुछ हल्का करना चाहते थे और अपने लिए तात्कालिक और साकार फायदे सुनिश्चित करना चाहते थे। उनकी सचेत गतिविधि रोजमर्रा के फायदों के तंग घेरे से बाहर न जा पाती थी।

सामन्तवादी व्यवस्था में जब पुरानी दस्तकारी की वर्कशॉपों, मैन्युफैक्चरिंग उद्योगों के साथ यूरोप के नए पूँजीपति बड़े-बड़े कारखाने खोलने लगे और जब इस प्रकार उन्होंने समाज की उत्पादक शक्तियों को आगे बढ़ाया, तब अवश्य ही वे यह न जानते थे और न यह सोचने के लिए वे रुके थे कि इस परिवर्तन का सामाजिक परिणाम क्या होगा। उन्होंने इस बात को नहीं समझा या इसका अनुभव नहीं किया कि इस ''छोटे-से'' परिवर्तन से, सामाजिक शक्तियों में एक नई जत्थेबंदी होगी। ये पूँजीपति, राजाओं की कृपा को अमूल्य समझते थे और उनमें से कुछ अग्रणी प्रतिनिधि तो अभिजात वर्ग की पाँत तक उठने को भी प्रायः उत्सुक रहते थे। मगर इन्हीं राजाओं और सरदारों के विरुद्ध क्रान्ति होने वाली

(शेष पृष्ठ 6 पर)

* श्रम के औजारों का तात्पर्य मार्क्स के मन में मुख्यतः उत्पादन के औजार हैं।

द्वंद्वात्मक ऐतिहासिक भौतिकवाद...

(पृष्ठ 5 का शेष)

थी और उसी जत्थेबंदी के फलस्वरूप, जिसे नए पूँजीपतियों ने कारखाने खोलकर बिना जाने-समझे पैदा कर दिया था। नए पूँजीपति तो माल तैयार करने में अपना खर्च कम करना चाहते थे। वे एशिया के बाजार में और नए ढूँढ़े हुए अमेरिका के बाजार में, काफी माल देना चाहते थे और पहले से ज्यादा नफा कमाना चाहते थे। उनकी सचेत कार्रवाई साधारण व्यवहारिक उद्देश्यों के छोटे-से घेरे में बँधी थी।

विदेशी पूँजीपतियों के सहयोग से जब रूसी पूँजीपतियों ने बड़े पैमाने पर माल तैयार करने वाले यांत्रिक उद्योग-धंधों की बड़ी मुस्तैदी से रूस में जड़ जमाई और जारशाही को ज्यों का त्यों छोड़कर किसानों को जमींदारों की दया के भरोसे छोड़ दिया, तब वे यह न जानते थे और न यह सोचने के लिए वे थमे कि, उत्पादक शक्तियों की इस बहु-वृद्धि का सामाजिक परिणाम क्या होगा। उन्होंने इस बात को न समझा या इसका अनुभव नहीं किया कि समाज की उत्पादक शक्तियों के क्षेत्र में इस छलाँग का परिणाम यह होगा कि, सामाजिक शक्तियों में एक नई जत्थेबंन्दी होगी और इस जत्थेबंदी से मजदूर, किसानों से एका कर सकेंगे और इस प्रकार सफलता से समाजवादी क्रान्ति कर सकेंगे। वे केवल औद्योगिक उत्पादन के विस्तार को एक सीमा तक पहुँचा देना चाहते थे। देश के भारी बाजार पर हावी होकर वे सर्वाधिकार सुरक्षित कर लेना चाहते थे। देश की आर्थिक व्यवस्था से जितना मुनाफा निकल सके, वे निकाल लेना चाहते थे। साधारण और सर्वथा व्यवहारिक उद्देश्यों के घेरे से बाहर उनकी सचेत कार्रवाई न जाती थी।

इसलिए मार्क्स ने लिखा था–''मनुष्य जो सामाजिक उत्पादन करते हैं (अर्थात् मानव जीवन के लिए आवश्यक भौतिक मूल्यों का जो उत्पादन करते हैं–सं.) उसमें वे ऐसे निश्चित सम्बन्ध स्थापित करते हैं जो अनिवार्य और उनकी इच्छा से स्वतन्त्र होते हैं। वे उत्पादन-सम्बन्ध, उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित अवस्था के अनुकूल ही होते हैं।'' (संक्षिप्त मार्क्स-ग्रंथावली)

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उत्पादन-संबंधों में परिवर्तन और पुराने उत्पादन-संबंधों से नए संबंधों की ओर संक्रमण शान्तिपूर्वक, बिना संघर्ष और विद्रोह के ही हो जाता है। इसके विपरीत साधारणत: पुराने उत्पादन-संबंधों के क्रान्तिकारी ध्वंस और नए संबंधों की स्थापना से ही, इस तरह संक्रमण होता है। एक निश्चित समय तक उत्पादन शक्तियों का विकास और उत्पाद-संबंधों के क्षेत्र में परिवर्तन अपने आप, मनुष्य की इच्छा से स्वतन्त्र हुआ करता है। परन्तु ऐसा एक वक्त तक ही होता है जब तक कि नई और विकसित होती हुई उत्पादक शक्तियाँ बढ़कर अच्छी तरह मजबूत नहीं हो जातीं। नई उत्पादक शक्तियों के मजबूत हो जाने पर, उनकी राह में एक ''हिमालय जैसी'' बाधा खड़ी हो जाती है। यह बाधा और कुछ नहीं, विद्यमान उत्पादन सम्बन्ध और उनके समर्थक-शासक वर्ग-हैं। नए वर्गों की सचेत क्रिया से, उनके बलपूर्वक कार्य करने से, अर्थात क्रान्ति से ही, यह हिमालय जैसी बाधा दूर की जा सकती है। यहाँ पर नए सामाजिक विचारों की, नई राजनीतिक शक्ति की–जिसका ध्येय ही उत्पादन के पुराने सम्बन्धों मे बलपूर्वक परिवर्तन करना हो–महान भूमिका हमें बहुत स्पष्ट आकार-प्रकार में दिखाई देने लगती है। नई उत्पादक शक्तियों और पुराने उत्पादन-संबंधों के संघर्ष से और समाज की नई आर्थिक माँगों से नए सामाजिक विचारों का जन्म होता है। ये नए विचार जन-साधारण को समेटते और संगठित करते हैं। जनता एक नई राजनीतिक सेना में संगठित हो जाती है और एक नई क्रान्तिकारी शक्ति उत्पन्न करती है। इस शक्ति का उपयोग वह पुराने उत्पादन-सम्बन्धों का बलपूर्वक नाश करने के लिए और दृढ़ता से नई व्यवस्था कायम करने के लिए करती है। अपने आप होने वाली प्रगति की जगह मनुष्यों की सचेत कार्रवाई ले लेती है। शान्तिमय प्रगति के बदले बलपूर्वक परिवर्तन किए जाते हैं। सामाजिक विकास की शान्ति के बदले क्रान्ति की ज्वाला धधक उठती है।

मार्क्स ने लिखा है–''पूँजीपतियों से लड़ते समय सर्वहारा वर्ग को परिस्थितियों से मजबूर होकर एक वर्ग के रूप में संगठित होना पड़ता है। क्रान्ति द्वारा सर्वहारा वर्ग शासक बनता है और शासक बनकर वह उत्पादन की पुरानी परिस्थियों को बलपूर्वक खत्म कर देता है।'' (कम्युनिस्ट घोषणापत्र)

और भी :

– ''सर्वहारा वर्ग अपने राजनीतिक प्रभुत्व का इस्तेमाल इसलिए करेगा कि वह क्रमश: पूँजीपतियों के हाथ से सभी पूँजी छीन ले, राजसत्ता के हाथ में अर्थात् शासक के रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग के हाथ में उत्पादन के सभी उपकरणों को केन्द्रित करे और जितनी जल्द हो सके, कुल उत्पादक-शक्तियों में वृद्धि करे।'' (वही, पृ. 629)

– ''पुरानी समाज व्यवस्था के गर्भ में जब नई समाज-व्यवस्था आ जाती है, तब उसके जन्म के लिए धाय के रूप में बल आवश्यक होता है।'' (कार्ल मार्क्स, पूँजी, खण्ड 1)

अपनी प्रसिद्ध कृति अर्थशास्त्र की आलोचना की ऐतिहासिक भूमिका में मार्क्स ने 1859 में ऐतिहासिक भौतिकवाद के सार का मसौदा दिया था जो प्रतिभाशाली दिमाग की उपज है :

–''मनुष्य जो सामाजिक उत्पादन करते हैं, उसमें वे ऐसे निश्चित संबंध स्थापित करते हैं जो लाजिमी हैं और उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते है। ये उत्पादन संबंध, उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित अवस्था के अनुकूल ही होते हैं। इन उत्पादन-संबंधों का योग ही समाज का वह आर्थिक ढाँचा है, वह असली नींव है, जिस पर राजनीति और कानून की भारी इमारत खड़ी होती है। इसी ढाँचे के अनुरूप, सामाजिक चेतना के विभिन्न रूप भी निश्चित होते हैं। भौतिक जीवन में उत्पादन की पद्धति साधारण रूप से सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन-क्रम को निश्चित करती है। मानव की चेतना उसकी सत्ता को निश्चित नहीं करती, इसके विपरीत उसकी सामाजिक सत्ता ही उसकी चेतना को निश्चित करती है। अपने विकास की एक निश्चित अवस्था तक पहुँच जाने के बाद समाज में पुराने उत्पादन-सम्बंधों से उत्पादन की भौतिक शक्तियों की मुठभेड़ होती है। इसी बात को कानूनी भाषा में यों कह सकते हैं कि सम्पत्ति के जिन सम्बन्धों में पहले वे शक्तियाँ काम करती रही हैं उनसे, उनकी मुठभेड़ होती है। ये उत्पादन संबंध, उत्पादक शक्तियों के विकास के विभिन्न रूप न रहकर, अब उनके बन्धन हो जाते हैं। इसके बाद सामाजिक क्रान्ति का युग आरम्भ होता है। आर्थिक ढाँचा बदलने से उस पर बनी हुई वह भारी-भरकम इमारत भी बहुत कुछ जल्दी ही बदल जाती है। इस तरह के परिवर्तनों पर विचार करते हुए एक भेद अवश्य समझ लेना चाहिए। एक तो उत्पादन की आर्थिक परिस्थितियों में भौतिक परिवर्तन होता है जिसे हम प्रकृति-विज्ञान की सही नाप-तौल की तरह आँक सकते हैं। दूसरा परिवर्तन-कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक, सौन्दर्य-सम्बन्धी या दार्शनिक परिवर्तन –संक्षेप में, वैचारिक रूपों का परिवर्तन होता है जिनमें, मनुष्य संघर्ष के प्रति सचेत होते हैं और निपटारे के लिए युद्ध करते हैं। किसी व्यक्ति के बारे में हम अपनी धारणा इस बात से नहीं बना लेते कि वह अपने बारे में क्या सोचता है; इसी तरह संक्रान्तियुग की अपनी चेतना के बल पर हम उसे नहीं जांच-परख सकते। इसके विपरीत, उस विद्यमान संघर्ष के बल पर करेंगे जो समाज की उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-सम्बन्धों में हो रहा है। समाज-व्यवस्था में उत्पादक शक्तियों के विकास की जितनी भी गुंजाइश होती है, उसके अनुसार जब तक वे विकसित नहीं हो लेतीं, तब तक वह समाज-व्यवस्था समाप्त नहीं हो सकती है। और उत्पादन के नए और उच्चतर संबंध तब तक प्रकट नहीं होते हैं, जब तक उनकी सत्ता के लिए आवश्यक भौतिक परिस्थितियाँ, पुरानी समाज-व्यवस्था के गर्भ में ही पुष्ट नहीं हो जातीं। इसलिए, मानव-जाति अपने सामने ऐसे ही कार्य सदा रखती है जिन्हें वह कर सकती है: क्योंकि इस बात को अगर और ध्यान से देखें तो मालूम होगा कि ये कार्य तभी उत्पन्न होते हैं जब उनकी पूर्ति के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ विद्यमान होती हैं या कम से कम तैयारी में होती हैं।'' (कार्ल मार्क्स, सं.ग्रं., अं. सं., मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 300-01)

सामाजिक जीवन और समाज के इतिहास पर लागू होने वाले मार्क्सवादी भौतिकवाद की यही रूपरेखा है। द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद की ये मुख्य विशेषताएँ हैं।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के मुख्य लक्षण इस तरह के हैं।

इससे स्पष्ट हो जाएगाा कि लेनिन ने पार्टी के लिए कौन-सी सैद्धान्तिक निधि की रक्षा की थी और संशोधनवादियों व गद्दारों के हमलों से उसे बचाया था और हमारी पार्टी के विकास के लिए लेनिन की पुस्तक भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना का प्रकाशन कितना महत्वपूर्ण था। (समाप्त)

आन्दोलन की राह पर छात्र

बीराखेड़ी, बावड़िया, इटावा क्षेत्र में सरकारी हायर सेकेण्डरी स्कूल खोलने की मांग

देवास (म.प्र.): देवास शहर के छात्र भी अब आन्दोलन के रास्ते पर चल निकले हैं। शहर के दूरस्थ इलाकों बीराखेड़ी, बावड़िया, इटावा में सरकारी हायरसेकेण्डरी स्कूल नहीं होने के चलते यहाँ के बच्चों को 5 से 6 किलोमीटर दूर के स्कूलों में पढ़ने जाना पड़ता है। लड़कियों की पढ़ाई तो इस दूरी के कारण आठवीं के बाद बन्द ही करवा दी जाती है। आर्थिक रूप से कमजोर और महंगाई की मार झेल रहे इन क्षेत्रों के रहवासी परिवारों के लिए अपने बच्चों को रोजाना इतनी दूर तक पढ़ने के लिए पहुँचाने का पैसा जुगाड़ करना आसान बात नहीं है।

इस समस्या को देखते हुए एआईडीएसओ की शुरूआत पर 26 सितम्बर को ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की जयन्ती पर एक धरना प्रदर्शन क्षेत्रीय सयाजी गेट पर किया गया। इस कार्यक्रम में तीनों ही क्षेत्रों से बड़ी संख्या में छात्र शामिल हुए। इस अवसर पर जिला कलैक्ट्रेट में ऑनलाइन आवेदन व बैंक चालान सिस्टम बन्द करने, नशीले पदार्थों की खुलेआम बिक्री पर रोक लगाने आदि मांगों के सम्बन्ध में ज्ञापन सौंपा।

आन्दोलन को तेज करने व नागरिकों को शामिल करने की मंशा से तीनों क्षेत्रों में हस्ताक्षर अभियान की शुरूआत भी इसी दिन की गई। इस हस्ताक्षर अभियान में न केवल नागरिकों ने सहमति से हस्ताक्षर किए बल्कि तीनों क्षेत्रों में वॉलन्टियर भी आगे आए। बीराखेड़ी में 4 अक्तूबर को छात्र व नागरिक रैली का आयोजन किया गया जिसमें लगभग क्षेत्र के प्रत्येक परिवार से कम से कम एक सदस्य शामिल हुआ। बाद में रैली सभा में तब्दील हो गई। सभा को एसयूसीआई (सी) के जिला प्रभारी हिमांशु श्रीवास्तव व डीएसओ जिला प्रभारी वाणी जाधव ने सम्बोधित किया।

सीजीएचएस अनुबंधित कर्मचारियों का धरना व प्रदर्शन

धरने को सम्बोधित करते हुए एआईयूटीयूसी के दिल्ली राज्य अध्यक्ष हरीश त्यागी

नई दिल्ली : 28 अक्टूबर को सीजीएचएस अनुबंधित कर्मचारियों ने अपनी मांगों को लेकर जन्तर मन्तर पर धरना दिया। अनुबंधित कर्मचारी स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय पर प्रदर्शन करना चाहते थे मगर उन्हें पुलिस व प्रशासन ने ऐसा करने की अनुमति नहीं दी।

सीजीएचएस में 2006 में डाटा एंट्री ऑपरेटर, कॉ-ऑर्डिनेटर व आपरेशन मैनेजर आदि पदों पर सैकड़ों कर्मचारी अनुबंध पर कार्यरत हैं। इन्हें कभी भी समय पर वेतन नहीं दिया जाता। हमशा वेतन दो-तीन महीने विलम्ब से मिलता है। वेतन भी नियमित कर्मचारी के समान देना तो दूर बल्कि योग्यता व कार्य के अनुरूप भी नहीं दिया जाता। लम्बे अर्से से काम करने के बाद भी नौकरी का कोई भरोसा नहीं है। दुख की बात यह है कि इन कर्मचारियों को सीजीएचएस अपना कर्मचारी मानने को तैयार नहीं है। सीजीएचएस उन्हें एनआईसी कर्मचारी कहती है और एनआईसी उन्हें निजी कम्पनी कर्मचारी कहती है। यानी कोई जिम्मेदारी ना लेने के चलते सैकड़ों कर्मचारियों का भविष्य अधर में लटका हुआ है। यह भी उल्लेखनीय है कि सीजीएचएस की डिस्पेंसरियों व कार्यलयों का अधिकांश कार्य इन्हीं कॉण्ट्रेक्ट कर्मचारियों के माध्यम से ही पूरा होता है फिर भी सीजीएचएस इन कर्मचारियों के हितों के बारे में कतई चिन्तित नहीं है। एआईयूटीयूसी के नेतृत्व में लम्बे अर्से से अनुबंधित कर्मचारी सीजीएचएस व एनआईसी के अधिकारियों से मिलते रहे व उन्हें बार-बार ज्ञापन देते रहे मगर कोई सुनवाई नहीं हुई। फलत: उन्हें अपना विरोध व्यक्त करने का माध्यम चुनना पड़ा। आज के धरने को एआईयूटीयूसी के दिल्ली राज्य अध्यक्ष हरीश त्यागी, कलावती हॉस्पिटल वर्कर्स यूनियन के महासचिव एसएसनेगी सहित कई मजदूर संगठनों के नेताओं ने संबोधित करके उनके आन्दोलन को अपना समर्थन दिया। सीजीएचएस के मेरठ जोन से साथी राघव, जयपुर से नानुराम, पटना से मुकेश, दिल्ली से राम चन्द्र, नीरज कुमार, प्रदीप, अब्दुल रजाक, सुरेन्द्र आदि ने सम्बोधित किया।

धरना स्थल से एक प्रतिनिधि मण्डल सीजीएसएस के महानिदेशक व एनआईसी के महानिदेशक को सात सूत्री ज्ञापन देने के लिए भेजा गया। ज्ञापन में मांग की गई कि सीजीएचएस में वर्षों से कार्यरत डीईओज़/ओ एम, की सेवाओं को नियमित किया जाए। प्रत्येक माह के प्रथम सप्ताह में वेतन देने की व्यवस्था की जाए। सीजीएचएस में नियमित कर्मचारी के समान वेतन, भत्ते व छुट्टियों सहित सभी हित लाभ दिए जाएं। आन्दोलनकारियों ने घोषणा की है कि यदि उनकी मांगें नहीं मानी गई तो सीजीएचएस के सभी अनुबंधित कर्मचारी अपने आन्दोलन को तेज करेंगे। देश भर में 21 नवम्बर को मांग दिवस व 5 दिसम्बर को विरोध मनाएंगे। उन्होंने जनवरी में अपना राष्ट्रीय सम्मेलन करने का भी निर्णय लिया

किसान खेतमजदूरों की विशाल रैली

क्योंझर (उड़ीसा): 7 अक्तूबर को क्योंझर कलैक्ट्रेट के सामने ऑल इण्डिया कृषक खेत मजदूर संगठन (एआईकेकेएमएस) द्वारा किसान खेत मजदूरों की एक विशाल रैली की गई। काली पाडिया से सुसज्जित जुलूस नारे लगाते हुए निकाला गया जो स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के पास से होते हुए कलैक्ट्रेट पहुँच कर सभा में तब्दील हो गया। प्रदर्शनकारी नारे लगा रहे थे: भूमिहीन किसानों को जमीन दो, कृषियोग्य जंगल भूमि के पट्टे किसानों को जारी करो, नहरों व खालों की मरम्मत करके कृषि भूमि के लिए सिंचाई हेतु पानी सप्लाई करो, आदि।

सभा की अध्यक्षता जाने-माने किसान नेता कॉमरेड घनश्याम महंता ने की। एआईकेकेएमएस, उड़ीसा के राज्य सचिव और एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) के राज्य कमेटी सदस्य कॉमरेड रघुनाथ दास सभा में मुख्य वक्ता थे। अपने सम्बोधन में कॉ. दास ने आम तौर पर मेहनतकशों और खास कर किसानों की न्यायोचित जनवादी मांगों को हासिल करने के लिए प्रतिरोधी जनआन्दोलन चलाने की जरूरत पर बल दिया। उन्होंने आगे कहा कि हाथी खुले घूम रहे हैं और घरों व फसलों को तबाह कर रहे हैं और लोगों की जान ले रहे हैं जिसके लिए सरकार न तो हाथियों को रोकने के लिए कुछ कर रही है और न ही पीड़ितों को कोई मुआवजा दे रही है। उन्होंने लोगों से अपील की कि हाथियों के जंगल में पुनर्वास के लिए सरकार को मजबूर कर देने के लिए आगे आएं। अन्य वक्ताओं में शामिल थे किसान संगठन के क्योंझर जिला सचिव कॉ. वेणुधर सरदार, लक्ष्मीधर महंता, विजयानन्द मल्लिक, प्रकाश मल्लिक।

कॉ. वेणुधर सरदार, लक्ष्मीधर महंता, विजयानन्द मल्लिक और गंगाधर महंता को लेकर एक चार सदस्यीय शिष्टमण्डल कलैक्टर, क्योंझर उड़ीसा से मिला और 17 सूत्री मांगों का एक ज्ञापन सौंपा। ज्ञापन में शराब पर रोक लगाने, जंगल भूमि का पट्टा किसानों को जारी करने, जॉब कार्ड होल्डरों को काम देने, मनरेगा में मशीनों से काम लिया जाना बन्द करने, किसानों को सीड सब्सिडी देने, 3000 रुपये महीना बुढ़ापा पेन्शन देने की मांग की

महिलाओं पर बढ़ते अत्याचार के खिलाफ कन्वेन्शन

भुवनेश्वर (उड़ीसा): महिलाओं पर बढ़ते अत्याचार के खिलाफ यहाँ 22 सितम्बर को लोहिया अकादमी यूनिट-9 में एक कन्वेन्शन आयोजित किया गया। इसकी अध्यक्षता प्रो. अरूण मिश्रा ने की। कन्वेन्शन में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जानी-मानी हस्तियों, बुद्धिजीवियों और आम नागरिकों ने काफी बड़ी संख्या में शिरकत की। वक्ताओं ने इस पर अपनी गहरी चिन्ता और व्यथा-वेदना का इजहार किया और विभिन्न कोणों से इसके अलग-अलग पहलुओं पर रोशनी डाली। इसके लिए मौजूदा व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराते हुए इसकी कड़ी निन्दा की। उन्होंने कहा कि आधी-आबादी पर बढ़ते बर्बर अत्याचार के मूक-दर्शक बन कर इन्हें जारी रहने हरगिज नहीं दिया जा सकता। इसमें पेश मूल प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ। अंत में 45 महत्वपूर्ण हस्तियों को लेकर कमेटी गठित की गई जिसकी अध्यक्ष समाजवैज्ञानिक प्रो. रीता राय को और महिला नेत्री विजय लक्ष्मी को सचिव चुना गया। कन्वेन्शन ने इस मुद्दे पर जल्द से जल्द विभिन्न कार्यक्रम लेने की घोषणा की। महिलाओं पर विभिन्न रूप में होने वाले अत्याचार को दर्शाने वाली एक फोटो प्रदर्शनी भी सम्मेलन स्थल पर लगाई गई।

R.N.I. No.- 43022/85
P.R.No.-DL(C)-01/1123/2012-2014
Posting at IPMBC on 7–8 and 22–23 Fortnightly, Date of Printing :5 November, 2013

केरल में नेता-कार्यकर्ताओं की सभा में

कॉ. कृष्ण चक्रवर्ती ने की चौतरफा संघर्ष छेड़ने की अपील

पार्टी के सांगठनिक विस्तार और विभिन्न जनआन्दोलनों में पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका अदा करने के परिप्रेक्ष्य में संगठन के बारे में स्पष्ट धारणा देने और आचरण विधि व सही कम्युनिस्ट चरित्र हासिल करने के संघर्ष के बारे में कार्यकर्ताओं को शिक्षित करने के उद्देश्य से 5-6 अक्टूबर को केरल के अडुर में पार्टी की राज्य कमेटी की विस्तृत बैठक हुई। इसमें पार्टी के पोलिट ब्यूरो सदस्य कॉमरेड कृष्ण चक्रवर्ती ने बात रखी। उपस्थित कार्यकर्ताओं ने संगठन और जीवन के विभिन्न पहलुओं को लेकर जो सवाल उठाए उन का जवाब देते हुए कॉमरेड चक्रवर्ती ने मौजूदा राजनैतिक परिस्थिति की व्याख्या सहित कॉमरेडों से तीनतरफा संघर्ष में जुट जाने की अपील की। उन्होंने कॉमरेड शिवदास घोष की शिक्षाओं और कॉमरेड नीहार मुखर्जी द्वारा निर्देशित रास्ते पर कार्यकर्ताओं को व्यक्तिगत संघर्ष पार्टी के अन्दरूनी संघर्ष और जनसाधारण को शामिल कराते हुए जनआन्दोलन गठित करने पर जोर दिया।

पार्किंग फीस लगाने का विरोध

बैंगलोर: शहर में पार्किंग फीस लगाने के बीबीएमजी के सुझाव की निन्दा करते हुए बैंगलोर बचाओ कमेटी के तत्वावधान में विभिन्न क्षेत्रें के नागरिकों ने 23 सितम्बर को मैसूर सर्कल पर विरोध प्रदर्शन किया। प्रदर्शनकारियों को कमेटी के संयोजक वी.एन. राजशेखर, राजाजी नगर सचिव प्रतिभा कुमारी बी.एस., सीनियर सिटीजन माधव राव आदि ने सम्बोधित किया। बाद में एम.एन. श्रीराम के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल माननीय मेयर से मिला और ज्ञापन सौंपा। मेयर ने उचित कार्रवाई करने का आश्वासन दिया। बैंगलौर बचाओ कमेटी के संयोजक डॉ. बी.आर. मंजूनाथ, सह-संयोजक वी. ज्ञानमूर्ति और डॉ. जयालक्ष्मी भी इस अवसर पर मौजूद थी। धरना सभा की अध्यक्षता कमेटी की मालेश्वरम इकाई की शोभा एस. ने की।

बाढ़ व फिलीन तूफान पीड़ितों द्वारा विरोध प्रदर्शन

कटक (ओडिशा) : कटक में राहत सामग्री की लूट में शामिल लोगों को तुरंत गिरफ्तार करने, कटक के बाढ़ व फिलीन तूफान पीड़ित सभी परिवारों को उचित मुआवजा देने, फिलीन तूफान व बाढ़ पीड़ित सभी छात्रों की फीस माफ करने, आदि मांगों को लेकर 28 अक्टूबर को जिला कलैक्ट्रट कार्यालय के समक्ष एसयूसीआई(सी) के नेतृत्व में विरोध प्रदर्शन किया गया।

मिड डे मील के कर्मियों ने एआईयूटीयूसी के बैनर तले किया प्रदर्शन

बेगूसराय (बिहार) : मध्याह्न भोजन कर्मी निर्मम शोषण की शिकार हैं। मिड डे मील कर्मियों को न्यूनतम मजदूरी भी नहीं मिलती है। सम्मानजनक वेतन के लिए एकजुट होकर लगातार आन्दोलन करने की जरूरत है। ये बातें 7 अक्टूबर 2013, सोमवार को मध्याह्न भोजन कर्मियों की ओर से कलेक्ट्रेट के समक्ष सभा को संबोधित करते सोशलिस्ट यूनिटी सेण्टर ऑफ इण्डिया (कम्युनिस्ट) के मजदूर संगठन एआईयूटीयूसी के प्रदेश अध्यक्ष कॉ. अरुण कुमार सिंह ने कही। उन्होंने कहा कि राज्य सरकार पोछा लगाने वाली दाई का वेतन ढाई हजार निर्धारित किए हुए है। मध्याह्न भोजनकर्मी तो दिनभर स्कूल में काम करते रहते हैं। उन्हें सिर्फ एक हजार रुपए मानदेय राशि मिलती है जो आज की कमरतोड़ महंगाई में गुजारे लायक नहीं है। ऐसी स्थिति में सरकार का रवैया उनके साथ उचित नहीं हैं। उन्होंने कहा कि सरकार भी पूँजीवादी ताकतों के इशारे पर काम करती है। इसलिए मजदूरों का शोषण जारी है। उन्होंने मध्याह्न भोजन कर्मियों को सरकारी न्यूनतम वेतन देने, सरकारी कर्मचारी का दर्जा देने और पेन्शन आदि सामाजिक सुरक्षा देने की मांग की।

इसके पहले मध्याह्न भोजन कर्मियों ने मालगोदाम से मांगों के समर्थन में नारेबाजी करते हुए जुलूस निकाला जो ट्रैफिक चौक, कचहरी रोड होते हुए कलैक्ट्रेट के समक्ष पहुँच कर सभा में तब्दील हो गया। मध्याह्न भोजन कर्मी संघ के राज्य महासचिव प्रमोद कुमार ने मांगों को लेकर आन्दोलन को निर्णायक स्थिति तक पहुँचाने का आह्वान किया। इस अवसर पर संघ के जिला अध्यक्ष महासचिव धर्मेंद्र कुमार, जिलाध्यक्ष सुनील कुमार सिंह, रामप्रवेश वर्मा, महेन्द्र महतो, शिवकुमार वर्मा साहेब पासवान, अवधबिहारी यादव, अरविन्द पासवान, रंधीर मिश्रा, सुधा देवी, रामपुकार विद्यार्थी आदि ने विचार रखे। इस अवसर पर जिले के विभिन्न प्रखण्डों से मध्याह्न भोजन कर्मी यहां जुटे थे।

सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर ऑफ इण्डिया (कम्युनिस्ट) की ओर से कॉ. सत्यवान द्वारा 3ए/38, डब्ल्यू.ई.ए., करोल बाग, नई दिल्ली-5 से संपादित व प्रकाशित तथा परम्परा प्रिंटिंग प्रेस, बी-70/83, इण्डस्ट्रियल एरिया, लॉरेंस रोड, दिल्ली-35 से मुद्रित, दूरभाष:011-25726631, Email: sarvaharadrishtikon@gmail.com; sarvaharadrishtikon@yahoo.com